REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 12 | ISSUE - 2 | NOVEMBER - 2022

# भारतेन्दु के प्रमुख हिन्दी नाटकों का अध्ययन

रमा तिवारी[1] , डॉ. प्रेमशंकर शुक्ल[2]
[1]शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
[2]विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग,एस.आर.पी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हनुमना, जिला रीवा (म.प्र.)

**सारांश –**

हिन्दी भाषा में नाटक ग्रंथों का श्रीगणेश उन्नीसवीं शदी के तृतीय चरण में हुआ। इसके पूर्व हिन्दी में नाटकों की रचना नहीं हो सकी थी। हिन्दी के कुछ कवियों ने संस्कृत भाषा के नाटकों का अनुवाद अवश्य किया था। यथा– ब्रजवासीदास ने प्रबोध चंद्रोदय, नेवाज कवि के शकुन्तला नाटक का अनुवाद किया। ये नाटक ब्रजभाषा में था। रीवा नरेश विश्वनाथ सिंह जू देव ने आनंद रघुनंदन नामक नाटक की रचना की। यह भी ब्रजभाषा में लिखा गया था। सर्वप्रथम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने परिनिष्ठित खड़ी बोली में नाटक लिखना प्रारंभ किया। उन्होंने साहित्य की प्रत्येक विधा को अपनाया किंतु सबसे अधिक उनका ध्यान नाटक की ओर रहा।

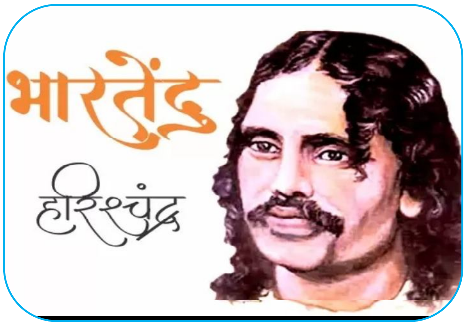


**मुख्य शब्द –** हिन्दी भाषा, नाटक, साहित्य एवं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ।

**प्रस्तावना –**

भारतेन्दु जी को नाटक लिखने और खेलने की कला विरासत में मिली थी। उनके पिता श्री गिरिधर दास ने नहुष नाटक की रचना की थी तथा उनके फुफेरे भाई बाबू राधाकृष्णदास ने दुःखिनीबाला, महारानी पद्मावती (मेवाड़ कमलिनी), महाराणा प्रताप (राजस्थान केशरी) जैसे नाटकों का प्रणयन किया और आगे चलकर भारतेन्दु जी का छोड़ा अधूरा नाटक 'सती प्रताप' को पूरा किया। उनका पूरा घराना ही साहित्य प्रेमी था, जिसका उन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। भारतेन्दु जी ने अपने अल्प जीवन काल में नौ मौलिक नाटकों की रचना की और सात बंगला एवं संस्कृत नाटकों का अनुवाद किया।

भारतेन्दु ग्रंथावली के 'पहले खण्ड' के आधार पर भारतेन्दु के मौलिक नाटकों का संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है –

**वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (प्रहसन, 1873 ई.) :–** इस प्रहसन का उद्देश्य वैदिक धर्मावलम्बियों के द्वारा देश में प्रचलित कुरीतियों पर कोरा कुठाराघात करने और उनके पतित चरित्र को स्पष्ट करने के लिए यह प्रहसन लिखा अर्थात् धर्म की आड़ में कितने पाखण्ड होते हैं। इसका पर्दाफाश करते हुए सामाजिक कुप्रथाओं के प्रति तीखे व्यंग्य किये गये हैं।

**प्रेमयोगिनी (नाटिका, 1875) :–** इस नाटिका में काशी की वास्तविक स्थिति का वर्णन चार गर्भांक में किया गया है। भारतेन्दु जी ने इस नाटिका में काशी तथा मुगलसराय के पतित एवं चरित्रहीन पण्डों का बाह्याडम्बर, दुराचार, अनैतिक व्यवहार पाठकों अथवा दर्शकों के हृदय पर असामाजिकता की गहरी छाप छोड़ी है। इसके प्रथम दो गर्भांक ''काशी के छायाचित्र या दो भले–बुरे फोटोग्राम के नाम से प्रकाशित हुए थे।''[1]

**विषस्य विषमौषधम – (भाण, 1876 ई.) :–** इस नाटक में एक ही पात्र है और एक ही अंक है। इसमें राजाओं तथा उनके कार्यकर्ताओं के द्वारा समाज पर किये गये अत्याचारों को दर्शाया गया है। इस नाटक में राजनीतिक परिस्थितियों को चित्रित किया गया है। भाण के लक्षणों के अनुसार प्रस्तुत कृति में एक ही पात्र रंगमंच पर आरम्भ से अंत तक आकाश भाषित शैली में बोलता है।

**चन्द्रावली (नाटिका, 1876 ई.) :–** इस नाटक को भारतेन्दु की सरल रचनाओं में से श्रेष्ठ माना है। ''यह नाटिका अनन्य प्रेम रस से पलावित है तथा भारतेन्दु जी की उत्कृष्ट रचनाओं में से है।''[2] भारतेन्दु ने इसमें पुष्टिमार्गीय भक्ति सिद्धांत का प्रतिपादन किया है।

**भारत–दुर्दशा (1876 ई.) :–** भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचना 'भारत–दुर्दशा' अत्यंत प्रिय हुई। इसमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने राष्ट्रीय चेतना और जनजागरण को सचेत करने के लिए इस नाटक की रचना की। अंग्रेजों के शासनकाल की दुर्व्यवस्था एवं दुर्व्यवहारों का चित्रण किया है। नाटक ने भारत के प्राचीन गौरव का वर्णन करते हुए वर्तमान भारत की यथार्थ शोचनीय दशा का वर्णन किया है। 'भारत–ददुर्शा' एक लास्यरूपक है – जिसका अर्थ है नृत्य–प्रधान नाटक। लास्यरूपक के पूर्व भारतेन्दु जी ने नाट्य रासक शब्द रखा है अर्थात् भारत–दुर्दशा को उन्होंने लास्यरूपक अथवा नाट्यरासक कहा है।''[3]

**नीलदेवी (गीतिरूपक 1880 ई.) :–** भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने नारी की स्वाधीनता की महान् भावना को प्रदर्शित किया है। इस नाटक के माध्यम से भारत का स्त्रीकरण करके, मुस्लिम राज्यकाल की ऐतिहासिक घटना तथा स्त्रियों के वीरत्व का प्रदर्शन किया है।

**अंधेर नगरी (प्रहसन 1881 ई.) :–** इस नाटक में समाज–सुधार तथा शिक्षाप्रद बातों को हास्य एवं विनोदपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है। भारतेन्दु का यह प्रहसन अत्यंत लोकप्रिय हुआ। इस प्रहसन को 'अंधेरनगरी चौपट राज, टके सेर भाजी टके सेर खाजा' के नाम से भी पुकारा जाता है।

**सती–प्रताप (नाटक 1884 ई.) :–** यह भारतेन्दु का अधूरा और अंतिम नाटक माना जाता है, जिसे वे पूर्ण न कर पाये। उन्होंने प्रथम चार दृश्य लिखे तथा शेष तीन दृश्यों को बाबू राधाकृष्णदास ने लिखकर इस नाटक को पूरा किया। नाटक में सावित्री सत्यवान की पौराणिक कहानी के आधार पर निर्मल प्रेम को प्रकट किया गया है। इस नाटक में आद्यान्त आदर्श प्रेम एवं धार्मिक प्रवृत्ति समान रूप से परिलक्षित होती है। यह नाटक स्त्रियों के लिए लाभदायक है।

**सत्य हरिश्चन्द्र (नाटक 1875 ई.) :–** भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक के उद्देश्य को बताते हुए कहा कि यह नाटक शिक्षाप्रद तथा बालोपयोगी तथा स्त्रियों के लिए उपयोगी है। नाटक की कथा प्रसिद्ध पौराणिक आख्यान पर आधारित है। नाटक की मौलिकता के प्रश्न पर अनेक दृष्टिकोण उपलब्ध हैं। कुछ विद्वान इसे मौलिक, कुछ अनुवाद और कुछ इसे छायानुवाद मानते हैं। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, ब्रजरत्नदास, डॉ. प्रेम नारायण शुक्ल, डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा, बाबू श्यामसुन्दर दास इसे मौलिक मानते हैं। आचार्य शुक्ल तथा डॉ. दशरथ ओझा ने इसे मौलिक नाटकों में स्थान नहीं दिया। डॉ. सोमनाथ, डॉ. वीरेन्द्र कुमार तथा डॉ. भानुदेव शुक्ल ने इसको न तो एकदम अनुवाद ही स्वीकार किया और न ही एकदम मौलिक।

**भारत–जननी (ओपेरा 1877 ई.) :–** यह छोटा सा नाट्य गीत है। यह रचना सर्वप्रथम 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' (1877) में प्रकाशित हुई। इसमें भारत भूमि और उसकी संतान की आपसी फूट, कलह के कारण दुर्दशा और भावी सुधार का वर्णन किया है। भारत माता एक खण्डहर पर बैठी हैं और भारत, सरस्वती साहब, भारत–संतान आदि अपने कथन करते हैं। धैर्य भारत को शांति देता है। अंग्रेज उसकी दुर्व्यवस्था पर दुःख प्रकट करता है और निरपेक्षता से पूजा–पालन का वचन देता है।

भारतेन्दु युग में समाज हर प्रकार से पिछड़ा हुआ था, उस समय समाज की दशा इतनी खस्ता हो गई थी कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने समाज की दशा को नाटकों के माध्यम से इस प्रकार दर्शाया है।

**भारत–दुर्दशा :–** सुदूर अतीत में भारत को महान् की संज्ञा दी जाती थी। पहले भारत देश, सभ्यता का सूत्रधार, धन–धान्य से भरपूर, बलवान्, विद्या एवं संस्कृति आदि में सबसे अग्रणी था परन्तु भारतेन्दु युग तक

पराधीनता के कारण वह निरन्तर पिछड़ता चला गया। भारतेन्दु जी से भारत की यह बुरी दशा देखी नहीं जाती थी और उन्होंने 'भारत–दुर्दशा' नाटक के दूसरे अंक में भारत के दुर्भाग्य को व्यक्त किया है – "हा! यह वही भूमि है जहाँ साक्षात् भगवान् श्री कृष्णचन्द्र के दूतत्व करने पर भी वीरोत्तम दुर्योधन ने कहा था, 'सूच्यग्रं नैंव दास्यामि बिना युद्धेन केशव' और आज हम उसी भूमि को देखते हैं कि श्मशान हो रही है। अरे यहाँ की योग्यता, विद्या, सभ्यता, उद्योग, उदारता, धन, बल, मान, दृढ़चित्रता, सत्य सब कहाँ गए?"[4]

## विश्लेषण –

प्रस्तुत नाटकों के द्वारा भारतेन्दु ने पाखण्ड और आडम्बर को यथार्थ के आमने–सामने प्रस्तुत कर तर्कपूर्ण उत्तर खोजने के लिए समाज को प्रेरित किया है।

## विषयस्य विषमौषधम (भाण) :–

भारतेन्दु जी ने 'विषयस्य विषमौषधम्' भाण में भण्डाचार्य की ये पंक्तियाँ उद्धृतव्य हैं–

"पर नारी पैनी छुरी, ताहि न लाओ अंग।
रावनहू को सिर गयो, पर नारी के संग।।"[5]

भ्रष्टाचार की स्थिति को देखते हुए तथा समाज में फैले अत्याचार से भारतेन्दु जी ने भण्डाचार्य के माध्यम से निम्न पंक्तियों में उनकी अधोगति को दर्शाते हुए उन्हीं के मुख से कहलवाया है कि–

"रावन ने दस सिर दिए, जनक नंदनी–काज।
जौ मेरा इक सिर गयो, तो यामें कहं लाज।।"[6]

अपनी बुराइयों को छिपाने का प्रयास करते हुए भण्डाचार्य चाँद का उदाहरण देते हुए कहते हैं– "परस्त्री संग से चन्द्रमा यद्यपि लांछित है तो भी जगत् को आनंद देता है वैसे ही हम बड़े कलंकित सही पर हमी इस नगर की शोभा हैं।"[7]

उपर्युक्त पंक्तियों के द्वारा भारतेन्दु ने तत्कालीन भ्रष्टाचार व अनाचार के ऊपर से पर्दा उठाया है – "भला दुष्ट बाबा भट्ट क्या हुआ तुम ने हमारा सब भेद खोल दिया, इस भेद खुलने पर भी हम ने तुम्है ओर कृष्णाबाई दोनों को न छकाया तो मेरा नाम भण्डाचार्य नहीं।"[8]

भारतेन्दु ने तत्कालीन भ्रष्टाचार पर प्रहार किया है। राजे, महाराजे को सर्वोसर्वे मानते हुए उनकी मनमानी करने का अधिकार था। वे चाहे जो भी करें, उन्हें कोई रोक–टोक नहीं थी। भारतेन्दु जी ने 'विषयस्य विषमौषधम' भाण में इन पंक्तियों में कटाक्ष किया है – "उन की बकरी थी चाहै जिस घाट पानी पिलाया।।"[9]

## नील देवी :–

नीलदेवी के प्रथम दृश्य में भारतेन्दु जी ने भारतीय नारी की अन्तरात्मा को जगाते हुए तथा उन्हें उत्साहित करते हुए अप्सरागण के माध्यम से यह दर्शाया है। यथा–

"धन–धन भारत की छत्रानी
वीर कन्या वीर प्रसविनी वीर वधू जग जानी।।
सती सिरोमनि धरमधुरन्धर बुधि बल धीरज खानी।
इन के जस की तिहूं लोक में अमल छुजा फहरानी।।"[10]

भारतेन्दु जी ने मुसलमानों के चरित्र का हू–ब–हू वर्णन नीलदेवी नाटक के माध्यम से किया है जो कि भिन्न पंक्तियों के द्वारा उनके चरित्र का प्रमाण मिलता है–

"पिकदानों चपरगट्ट है बस नाम हमारा।
इक मुफ़्त का खाना है सदा काम हमारा।।
उमरा जो कहे रात तो हम चाँद दिखा दें।
रहता है सिफारिश से भरा जाम हमारा।।
कपड़ा किसी का खाना कहीं सोना किसी जा।
गैरों ही से है सारा सरंजाम हमारा।।
हो रंज जहाँ है कुरआन है ईयां है नबी है।
ज़र ही मेरा अल्ला है ज़र राम हमारा।।"[11]

## सत्य हरिश्चन्द्र (नाटक) :–

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक के प्रथम अंक में सत्य हरिश्चन्द्र के गुणों का व्याख्यान किया है। उन्होंने यह बताया है कि वह बहुत ही परोपकारी एवं शिष्टाचारी थे, सत्य की पगडंडी पर रहते थे। नारद जी के माध्यम से उनके गुणों का व्याख्यान इस प्रकार किया है – "यद्यपि इसी सूर्यकुल में अनेक बड़े–बड़े धार्मिक हुए पर हरिश्चन्द्र तो हरिश्चन्द्र ही हैं।"[12]

सत्य की तस्वीर हरिश्चन्द्र में प्रत्यक्ष झलकती थी जहाँ सत्य है, वहाँ पर सभी गुण विद्यमान होते हैं, वहाँ की प्रजा सुखी एवं सन्तोषमय जीवन व्यतीत करती है। यथा– "सत्य की तो मानो हरिश्चन्द्र मूर्ति है। निस्संदेह ऐसे मनुष्यों के उत्पन्न होने से भारत भूमि का सिर केवल इनके स्मरण से उस समय भी ऊँचा रहेगा जब वह पराधीन होकर हीनावस्था को प्राप्त होगी।"[13]

भगवान ने मनुष्य का हृदय ऐसा बनाया है कि दूसरों के गुणों को नहीं सुन सकता। उनमें ईर्ष्या पैदा होने लगती है। इसी प्रकार नारद जी ने हरिश्चन्द्र के गुणों का व्याख्यान इन्द्र के सामने किया तो वह सुन न सके। समाज में प्रत्येक व्यक्ति दूसरों गुणों को सुनकर खुश न होकर दुःखी होते हैं। हर इंसान दूसरों को ऊँचा उठते देख नहीं सकता। इसी प्रकार, "यद्यपि इसका स्वभाव सहज ही गुणग्राही हो तथापि दूसरों की उत्कट कीर्ति से इसमें ईर्षा होती ही है, उसमें भी तो जितने बड़े हैं उनकी ईर्षा उतनी ही बड़ी है। हमारे ऐसे बड़े पदाधिकारियों को शत्रु उतना संताप नहीं देते जितना दूसरों की सम्पत्ति और कीर्ति।"[14]

मनुष्य धन, सम्पत्ति से बड़ा नहीं होता लेकिन मनुष्य में गुण नहीं तो धन भी काम नहीं आता। समाज में इज्जत हो, धार्मिक निष्ठा हो, दूसरों के दुःख को अपना दुःख समझे, विपत्ति में सहायता करे वही मनुष्य बड़ा होता है। अगर मनुष्य में यही सब गुण होंगे वही मनुष्य विद्वान है और वहाँ पर लक्ष्मी भी खुद विराजमान रहती हैं। इसी प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सत्य हरिश्चन्द्र नाटक के प्रथम अंक में दर्शाया है– "बड़ाई उसी का नाम है जिसे छोटे–बड़े मानें, और फिर नाम भी तो उसी का रह जाएगा जो ऐसा दृढ़ होकर धर्म साधन करेगा।"[15] इसके साथ ही चरित्र के बारे में यह बताया है कि मनुष्य के लिए चरित्र भी अपना महत्व रखता है।

## अंधेर नगरी (प्रहसन) :–

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'अंधेर नगरी' नाटक के प्रथम अंक में दर्शाया है कि अगर लोभ का त्याग कर दिया जाये तो समाज में सुख का अनुभव हो सकता है। यथा–

"लोभ पाप को मूल है, लोभ मिटावत मान।
लोभ कभी नहीं कीजिए, यामैं नरक निदान।।"[16]

कवि ने 'अंधेर नगरी' नामक प्रहसन में जाति–पाँति की संकीर्णता एवं स्वार्थ का चित्रण निम्न पंक्तियों में किया है–

"जात ले जात, टके सेर जात।
एक टका दो, हम अभी अपनी जात बेचते हैं।"[17]

टके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो जायं और धोबी को ब्राह्मण कर दें। टके के वास्ते जैसी कहा वैसी व्यवस्था दें। टके के वास्ते झूठ को सच करैं। टके के वास्ते ब्राह्मण से मुसलमान, टके के वास्ते हिंदू से क्रिस्तान।।

भारतेन्दु युग में आलस्य, मदिरापान, मांस भक्षण के साथ–साथ समाज में लोभ का भी बोलबाला था। लोभ से ही समाज में चारों ओर दुःख मंडरा रहा था। वे जाति–पाँति के भेदभाव एवं ऊँच–नीच पर विश्वास नहीं रखते थे। इसी भेदभाव के कारण भारत में अनेक प्रकार का भेदभाव, फूट, छुआछूत आदि की कुप्रवृत्तियाँ दुर्दशा बनकर आई। 'अंधेर नगरी' नामक प्रहसन में जाति–पाँति की संकीर्णता एवं स्वार्थ का चित्रण किया गया है।

## चन्द्रावली (नाटिका) :–

भारतेन्दु जी ने चन्द्रावली नाटिका में प्रेम–प्रसंग का वर्णन बड़े ही सुंदर ढंग से किया है। चन्द्रावली श्री कृष्ण के प्रेम में इतनी लीन हो जाती हैं कि उसके चेहरे से श्री कृष्ण के प्रति प्यार झलकता दिखता है और उनकी सखी ललिता उससे बार–बार पूछती हैं तू हर समय कहाँ खोई रहती है और चुपचाप रहती है लेकिन वह अंदर ही अंदर प्यार को छिपाये रहती है, लेकिन ललिता उसकी स्थिति को पहचान जाती है और कहती है कि प्रेम छिपाने से नहीं छिपता, यह अनायास ही आँखों से प्रकट हो जाता है, जैसा कि इन पंक्तियों के द्वारा दर्शाया है–

"छिपाये छिपत न नैन लगे।
उघरि परत सब जानि जात हैं घूँघट मैं न खगे।
कितनो करौ दुराव दुरत नहिं जब ये प्रेम पगे।
निडर भये उघरे से डोलत मोहन रंग रंगे।।"[18]

चन्द्रावली की विरह वेदना का यथार्थ चित्रण भारतेन्दु जी ने इस प्रकार उजागर किया है–

"मनमोहन तें बिछुरी जब सों
तन आंसुन सों सदा धोवती हैं।
हरिचंद जू प्रेम के फंद परी
कुल की कुल लाजहि खोंवती हैं।।
दुःख के दिन को कोउ भाँति बितै
बिरहागम रैन सँजोवती हैं।
हमहीं अपुनी दसा जानैं सखी।
निसि सोवती हैं किधौं रोवती हैं।।"[19]

चन्द्रावली के सच्चे तथा निःस्वार्थ प्रेम–भावना और विरह–वेदना का निरूपण भारतेन्दु जी ने ललिता के माध्यम से इस प्रकार बड़े मार्मिक ढंग से किया है–

"सखी मैं तो पहिले ही कह चुकी कि तू धन्य है, संसार में जितना प्रेम होता है कुछ इच्छा लेकर होता है और सब लोग अपने ही सुख में सुख मानते हैं पर उसके विरुद्ध तू बिना इच्छा के प्रेम करती है और प्रीतम के सुख से सुख मानती है। यह मेरी चाल संसार से निराली है, इसी से मैंने कहा था कि तू प्रेमियों के मंडल को पवित्र करने वाली है।"[20] भारतेन्दु जी ने 'चन्द्रावली' (नाटिका) के चौथे अंक में जोगिन को भी दर्शाया है जिसमें वह अपने आप से बात करती है कि वृंदावन में भी सभी नाटिका प्रलास से भरी हुई हैं लेकिन चन्द्रावली का प्रलाप अत्यधिक हृदयद्रावक और उसके प्रेम की उत्कटता और मानसिक दशा का तो अलग ही परिचय है।

## निष्कर्ष –

निष्कर्षतः नाटकों में 'भारत–दुर्दशा', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', विषयस्य विषमौषधम', 'प्रेम–जोगिनी', 'नीलदेवी', 'भारत–जननी', सती प्रताप', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'श्री चंद्रावली', 'अन्धेर नगरी' इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि उन्होंने अलग–अलग नाटकों में केन्द्रीय समस्या के रूप में एक समस्या विशेष को लिया है। यद्यपि

अन्य समस्याएँ साथ–साथ यथासम्भव उकेरी गई है। भारतेन्दु एक नव समाज की संकल्पना को लेकर चले थे। भारत जैसे विशाल देश में समाजगत वैविध्य अनेक रूपों और स्तरों पर देखने को मिलता रहा है लेकिन विडम्बना यह रही है कि समाज सर्वत्र, अन्धविश्वासों, रूढ़ियों, मिथ्याचारों और बाह्य आडम्बरों की जकड़बन्दी में कसा हुआ था। इस जकड़बन्दी को तोड़कर मानवीय अस्मिता और सत्ता की स्थापना की दृष्टि से भारत दुर्दशा में उन्होंने निर्लज्जता जैसी विडम्बना को पात्र का रूप देकर समाज की दुर्दशा के कारणों पर तीखे प्रहार किए हैं। दूसरे छोर पर भावात्मक स्तर पर आशा जैसे पात्र के सृजन द्वारा उन्होंने रसातल को जाते हुए समाज को एक सही मानवीय समाज के रूप में स्थापित करते हुए आशावादी दृष्टिकोण प्रदान किया है।

## संदर्भ –


1 श्री ब्रजरत्नदास – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृष्ठ 195
2 श्री ब्रजरत्नदास – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृष्ठ 199
3 डॉ. गोपीनाथ तिवारी – भारतेन्दु के नाटकों का शास्त्रीय अनुशीलन, पृष्ठ 253
4 भारत–दुर्दशा – भारतेन्दु–ग्रन्थावली (पहला खण्ड), पृष्ठ 135
5 विषयस्य विषमौषधम – भारतेन्दु ग्रन्थावली (पहला खण्ड), पृष्ठ 31
6 विषयस्य विषमौषधम – भारतेन्दु ग्रन्थावली (पहला खण्ड), पृष्ठ 31
7 विषयस्य विषमौषधम – भारतेन्दु ग्रन्थावली (पहला खण्ड), पृष्ठ 31
8 विषयस्य विषमौषधम – भारतेन्दु ग्रन्थावली (पहला खण्ड), पृष्ठ 31
9 विषयस्य विषमौषधम, पृष्ठ 32
10 नीलदेवी – भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ 220
11 नीलदेवी – भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ 110
12 सत्य हरिश्चन्द्र – भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ 259
13 सत्य हरिश्चन्द्र – भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ 259
14 सत्य हरिश्चन्द्र – भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ 259
15 सत्य हरिश्चन्द्र – भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ 260
16 अन्धेर नगरी – भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ 168
17 अन्धेर नगरी – भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ 171
18 चन्द्रावली – भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ 53
19 चन्द्रावली – भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ 57
20 चन्द्रावली – भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ 57